International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor – 0.899
Vol.2 No.6 July–Aug. 2015

कबीर की प्रासंगिकता

डॉ. श्रीकांत बी. संगम

सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

सी.एस.बी. कला, एस.एम.आर.पी. विज्ञान और

जी.एल.आर. वाणिज्य स्नातक महाविद्यालय, रामदुर्ग-591123

Email: sbshindi@gmail.com

संसार में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए जिन-जिन महापुरुषों ने भी अपनी जीवन काल में संघर्ष किया और अपने लक्ष्य में सफल हुए, उनकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में बनी रहती है और तब तक बनी रहेगी जब तक मानव जाति का अस्तित्व रहेगा। भगवान गौतम बुद्ध, पैगम्बर मोहम्मद साहब, प्रभु ईसा मसीह, गुरु नानक देव आदि तमाम ऐसे संत-महात्मा हुए हैं, जिनके विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। उन्हीं की श्रेणी में भक्त कवि संत कबीरदास का नाम भी लिया जा सकता है।

कबीर अपने समय के एक ऐसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति है जिन्होंने अपने को सदैव काल सम्पृक्त बनाये रखा। अपने युग के समाजशास्त्री के रूप में उन्होंने अपनी प्रतिभा को प्रकाशित करवाया। वर्तमान समय भी कबीर की विचारधारा पर चिंतन कर सकता है कि उनके द्वारा अभिव्यक्त वाणी हमारे लिए नई सामाजिक चेतना को जागृत करवाता है। कबीर ने अपने समय को जिस दृष्टि से देखने का प्रयास किया। उसकी आवश्यकता ही वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता को स्थापित करता है। उनके संदर्भ में प्रायः यह कहा जाता है कि वे एक विचारशील और समाज प्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों और व्यवस्था की गहरी खाई को करीब से देखा और भोगा भी। उनका साहित्य ही उनके भोगे हुए यथार्थ का एक सर्वोपरि उदाहरण है।

कबीर की प्रासंगिकता के संदर्भ में सबसे पहले यह देखना आवश्यक है कि उनका समाज कैसा था, उन्होंने अपने समाज को कितनी पैनी निगाह से देखा-परखा था और उस व्यवस्था की जड़ें बढ़ती वर्तमान समाज में कहाँ तक और किस गहराई तक फैली है। कबीरकालीन समाज के संबंध में डॉ. शुकदेव सिंह की टिप्पणी बहुत ही मूल्यवान है कि यहाँ हिन्दु रहते थे, मुसलमान रहते थे, शैव थे, वैष्णव थे, ब्राह्मण और कसाई थे, शेख और मुल्ला थे, यहाँ मन्दिर थे, मस्जिद थे, वेद और कुरान थे, आदमी और आदमी के फर्क थे, गरीब और लुटेरे थे। यहाँ कुछ लोग केवल कमा रहे थे और कुछ केवल खा रहे थे। इस जहान में धर्म थॅ, उनकी टकराहट थी, आचार थे, ईश्वर के अनेकों अवतार थे, पाखण्ड थे, तीर्थ थे। कबीर ने समझ लिया था कि इस अंधे विस्तार में सबकुछ है, केवल रोशनी नहीं है। इस समाज में एक ओर उच्च स्तर के वे लोग थे जो विलासिता के पंक में डूबे थे तो दूसरी ओर कबीर ने इर्द-गिर्द के बुनकर, दर्जी, धोबी, मोची, नट, बाजीगर आदि निम्नतम श्रेणियों के लोग थे। ये ही लोग श्रम करते थे, फिर भी दरिद्र, रोगी, अशिक्षित, सब प्रकार से शोषित और वंचित थे। कबीर ने अनुभव किया था कि इन बेजुबान लोगों की जुबान बनने की आवश्यकता है। इसलिए वे अपने समकालीन समाज में व्याप्त

शोषण, उसकी बुराइयों और विसंगतियों के खिलाफ ताल ठोंककर मैदान में उतर गये और सामाजिक बुराईयों के विरोध के साथ शोषितों की पक्षधरता भी की।

कबीर अपने जीवनकाल में जिन समस्याओं से जूझ रहे थे, वही समस्याएँ रूप बदलकर आज भी मौजूद हैं। इसलिए कबीर साहित्य की प्रासंगिकता यथावत् बनीहै। कबीर का विशुद्ध भावमूलक तथा मानव समतावादी धर्म आज भी सार्थक है। कबीर ने छः सौ वर्ष पहले जो संघर्ष छेड़ा था, यदि उसे उसी रूप में आगे बढ़ाया गया होता तो भारतीय समाज का नक्शा ही कुछ और होता। ऐसे ही निर्भीक एवं जुझारू व्यक्तित्व की आवश्यकता आधुनिक समाज को भी है। जो खुलकर सच को सच और और झूठ को झूठ कह सके, जो सभी प्रचलित धर्मों के आडम्बरपूर्ण परस्पर विरुद्ध तत्वों को निर्ममतापूर्वक काटकर विशुद्ध मानव हितकारी एक भारतीय धर्म की स्थापना की पहल कर सके और भारतीय धर्म, दर्शन और ज्ञान की परम्परा की अवहेलना करने वाले पाखण्डियों को खरी-खोरी सुना सके। हिन्दी के यशस्वी रचनाकार मुक्तिबोध ने कबीर द्वारा प्रतिष्ठित जिस धर्म की ओर दृष्टि आकर्षित की है, उसी की सार्थकता आज के समाज में है। कबीर (और नानक) मानव समानता के प्रचारक, शील और स्नेह के पुरस्कर्ता तो थे ही, उन्होंने मानव मात्र के लिए, सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा करनी चाही वह धर्म नहीं जो किताबों और ग्रंथों में बँधा रहता है जो रूढ़ियों और रिवाजों में फँस जाता है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच गर्व और दम्भ, पाखण्ड और द्वेष की दीवारें खड़ी करके मानवता को अलग-अलग टुकडों में काटकर तितर-बितर कर देता है। वरन् उन्होंने उस धर्म को प्रतिष्ठित किया जो मानव मात्र के अंतःकरण में मानव गुण के रूप में विराजमान है, जो हृदय का गुण और आत्मा का स्वभाव है, जिसके द्वारा मानवता अखण्ड हो जाता है, जनता एक हो जाती है।

कबीर अपने समय के क्रान्तिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आडम्बरों, कुरीतियों, जडता, मूढ़ता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन किया। कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध इतना था कि उन्होंने हर एक परंपरा, रूढ़, कुरीति तथा पाखण्ड को यथार्थ के धरातल पर खारिज किया। अबुलफजल ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि "कबीर ने समाज के सडे-गले रीति रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज सुधार के लिए कोडे खाए तो व्यंग्य तथा हँसी, ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की।" उन्होंने आलोचना के साथ सृजन की रूपरेखा रखी। कबीर अराजकता, सामंतवाद तथा उथल-पुथल के दौर में क्रान्तिकारी स्वप्नकार है। वे स्वभाव से संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेश का। उन्होंने अंधविश्वासों का उपहास कर ठीक निशाने पर चोट पहुँचाई। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अवतारवाद एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया तथा ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को अस्वीकार किया। उन्होंने हर रूढ़ को खारिज किया जो मानव-मानव में भेद कराती थी। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, लूट-खसौट, मिलावटखोरी जैसे अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं तभ कबीर के ये विचार अति प्रासंगिक हैं। कबीर ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धैर्य, सहिष्णुता, कर्मयोग, गुरु का सम्मान, प्रेम, मानवता, आत्मा की पवित्रता, दीन-दुखियों की सेवा, नैतिकता के पालन को मानवीय कर्तव्य माना।

कबीरदास हमेशा इस विश्वास पर अधिक बल दिया कि संसार में मानवता से बड़ा और कोई धर्म नहीं है। भगवान ने सभी वस्तुओं को सभी प्राणियों में एक समान विभक्त किया है। चाहे वह पानी, पवन, प्रकाश हों यहाँ की सभी मनुष्यों के आकार-प्रकार को भी एक समान बनाया है। इसी बात से हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि समस्त संसार में यह मनुष्य दिखने में तो एक से है, सम्भवतः उन्हें बनाने वाला भी तो एक ही होगा। भगवान को विविध नामों एवं प्रकारों में उल्लेख करना अंधविश्वास कहलाता है। कबीर ने यह कहा है कि संसार में विविध रूपों में ईश्वर का रूप विद्यमान है। हमें सिर्फ उसे खोजने की आवश्यकता है। संसार के वृक्षों की सभी लकडियों में अग्नि छिपा हुआ है और बढ़ई सिर्फ तकड़ी को ही काट सकता है, लेकिन वास्तव में लकड़ी में छिपे

अग्नि को कोई काट नहीं सकता। इससे यहीं स्पष्ट हो जाता हैं कि सभी धर्मों की बुनियाद एकता है, एकता में ही सबसे अधिक विश्वास होना चाहिए और उसमें ही सबसे अधिक बम भी है।

कबीर को आधुनिकता का संवाहक कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने अन्ध-आस्था की जगह तर्क का आश्रम लिया है और मुक्त चिंतन प्रदान किया है। आज का युग समानता का युग है। कबीर वाणी सबसे पिछडे, पीडित, दबे हुए लोगों को भी नैराश्य कुंठा से बाहर निकालकर उनके भीतर अत्मबल का संचार करती है। कबीर साहब का संदेश जड़ता को तोड़ने वाला तथा चैतन्य का प्रकाश विकीर्ण करने वाला महान संदेश है, जिसने आज से 600 वर्ष पहले जिस प्रकार नैराश्य और कुंठा से संत्रस्त मानव समाज को जीवित रखा था, उसी प्रकार आज भी मानव समाज को आत्मबल प्रदान करनेवाला है। धर्मान्धता, सांप्रदायिकता, हिंसा, हत्या, खून, खराबा, जातिवाद, असमानता, भय, आतंक से ग्रसित समूचे समाज के लिए यदि कहीं प्रकाश की किरण या दिशा दिखाई देती है तो वह सिर्फ कबीर साहब में दिखाई देती है।

यद्यपि कबीर को पैदा हुए साढ़े पाँच सौ वर्ष बीतने को हैं, फिर भी कबीर के प्रतिपाद्य की प्रासंगिकता क्षीण नहीं होने पायी है। या यों भी कहा जा सकता है कि धरती पर जब तक मानव पर अत्याचार होते रहेंगे, जाति-धर्म-अर्थ के नाम पर मानव और मानव मूल्यों की घिनौनी हत्याएं होती रहेंगी, मानव सद्भावना समाज जीने का अभ्यासी नहीं होगा। आदर्श मानव की संक्लपना अधूरी रहेगी, तब तक निस्सन्देह, कबीर की वाणि प्रासंगिक रहेगी। ऐसे संत कवियों की प्रासंगिकता इस प्रकार अवलोकनीय है-

अ) दार्शनिक दृष्टि से : कबीर ने सम्पूर्ण समाज को एक राह पर लाने के लिए, मत-मत में एकमत स्थापित करने के लिए ऐसे ब्रह्म की संकल्पना की जो सभी जातियों एवं धर्मावलंबियों को स्वीकार हो। उन्होंने उस ब्रह्म का नाम राम प्रस्तावित किया, लेकिन कबीर के राम वो राम नहीं जो तीनों लोगों में दशरथ-सुत के रूप में विख्यात हैं। कबीर के 'राम' निर्गुण-निराकर है, वाणी और व्यंजना से ऊपर है, सर्वत्र व्याप्त और सबसे न्यारा है, यह तो केवल ध्यानगम्य व अनुभवगम्य है। इस प्रकार कबीर ने अपने दार्शनिक चिंतन के माध्यम से सर्वस्वीकार्य ब्रह्मोपासना को प्रस्तावित किया है और इस ब्रह्मोपासना को समस्त सुखों तथा सद्भावों का विधायक-नियामक माना है।

आ) आर्थिक दृष्टि से : ध्यान देने योग्य है कि लोक में आर्थीक व्यवस्था की अपनी विशिष्ट महत्ता और अनिवार्यता है। वह हमारे जीवन में नाना संदर्भों को प्रभावित करने के साथ उसे रूपान्वित भी करती है। कबीर जहाँ अर्थ की अनिवार्यता से परिचित थे, वहीं वे उसकी दूषणता को भी जानते थे। उन्हें मालूम था कि धन सामाजिक विषमता का कारण है। यह धन, यह अर्थ नाना प्रकार के अनर्थों को पैदा करता है, निर्धन को मानहीन बना देता है।

इ) सामाजिक दृष्टि से : साहित्यकार अपने साहित्य में बसता है और साहित्य में समाज का निवास है, इसीलिए समाज, साहित्यकार और साहित्य को अलग-अलग करके देखा नहीं जा सकता है। तीनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। जिस समाज में साहित्यकार का शारीरिक और मानसिक विकास होता है, साहित्य, साहित्यकार प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अपने साहित्य में समाज के भिन्न-भिन्न सरोकारों को ही शब्दायित करता है। यद्यपि कबीर ज्ञानमार्गी संत थे, उनका लक्ष्य अध्यात्मिक जगत का भावन और वर्णन था। लेकिन उन्होंने अपनी सारग्राही दृष्टि से संसार और समाज में व्याप्त भाँति-भाँति के आचारिक और मानसिक विकारों को विनष्ट करके आदर्श मानव और आदर्श समाज की संरचना ही कबीर की कामना थी। कबीर की इसी कामना और साधना के कारण समीक्षकों ने उन्हें समाज-सुधारक की भी संज्ञा प्रदान की है।

ई) अभिव्यक्ति की दृष्टि से : अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कबीर की प्रासंगिकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि अभिव्यक्ति का मूल मर्म सहज-निर्बोध प्रेषणीयता है। कबीर की चेतना अभिव्यक्ति के इसी मूल मंत्र को लेकर व्यक्त हुई है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से कबीर का एक ही उद्देश्य था- अपने दृष्टिकोण का, अपने विचार का प्रतिपादन और उस प्रतिपादन का सहज संप्रेषण। लोक जिस शैली से, जिस भाषा से, जिन शब्दों से अभिभूत हो, वे सब कबीर को सहज ग्राह्य-स्वीकार्य थे। कबीर का सारा ज्ञान लोक सापेक्ष अनुभवजनित था और वे उसकी ज्ञान को अपने तक सीमित रखना चाहते थे, इसीलिए उन्हें सहज संप्रेषण के माध्यमों की तलाश थी और वह वही तलाश उनकी सहज भाषा के रूप में रूपित हुई है।

उ) नैतिक दृष्टि से : कबीर काव्य का मूल स्वर आचारिक और मानसिक निर्मलता है। उन्होंने आंतरिक पवित्रता के प्रभाव के प्रभाव को भावित करके ही सारा साहित्य रचा है। चूँकि कबीर तत्वदृष्टा संत थे, इसलिए उन्होंने बाह्य साधना के स्थान पर अंतर-साधना पर बल दिया और अन्तर-साधना की सिद्धि नैतिकता से स्वीकारी। उल्लेखनीय यह है कि नैतिकता कोई सभ्यता नहीं है जो सीखकर-देखकर धारण की जा सके। नैतिकता तो हमारी आंतरिक चेतना है और यही चैतन्य भावधारा कबीर के चिंतन का मूल मर्म है।

वर्तमान समय अपने को जितना ही प्रगतिशील कहे, वह उतना ही अंधविश्वासी, रूढ़िवादी, षड्यंत्र प्रिय है। समस्त संसार विकासवाद को सम्मान देता है। संसार का विकास पथ अग्रसर होगा तो मानवता का ही कल्याण होगा। लेकिन क्या हमारा विकास प्रगतिशील है? प्रगतिशील होने का अभिप्राय तो यही होना चाहिए कि इसमें किसी भी प्रकार के श्रेणी, जाति, संप्रदाय, धर्म हास्य रूप न हो बल्कि इन सबका विकसित रूप समाज के सम्मुख परिलक्षित होना चाहिए। कबीर ने सच्चे बनकर हमारे समाज को देखने का प्रयास किया है लेकिन उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। कबीर मानवतावाद के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने जन जन तक मानवतावादी विचारधारा को पहुँचाने का प्रयास किया है।

निःसंदेह, कबीर का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रासंगिक है। व्यक्ति के लिए समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, साहित्य के लिए तथा मानवता के उत्थान के लिए कबीर का योगदान बार-बार विचारणीय, भावनीय, उल्लेखनीय एवं सराहनीय है। कबीर का जीवन दर्शन सच्चे अर्थों में समाज का सच्चा दर्शन कहा जा सकता है। दर्शन का अभिप्राय एकांत चिंतन नहीं, बल्कि दर्शन तो वह है जो जीवन के प्रति अर्थवत्ता एवं मानवीय चिंता को अभिव्यक्त कराता है। वर्तमान 21वीं सदी कबीर को समाज की विकास धारा के रूप में ग्रहण कर सकता है। मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है वह किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। जीवन में आवश्यक है अच्छे विचार, अच्छे जीवन दर्शन, अच्छे ज्ञान की जो सब के लिए ग्रहण करने योग्य हो। समाज में एकता की स्थापना कर पाना, आज के समय के लिए काफी जटिल हो चुका है। सभ्यता की आढ़ में समाज जितना विकसित होता हुआ दिख रहा है वह उतना ही अधोगति की ओर जा रहा है। जाति के नाम पर लड़ना नहीं बल्कि हमें जाति एवं समुदायों के मध्य प्रेम, आपसी भाईचारा, बन्धुत्व आदि को और अधिक स्थापित करना है।

संदर्भ सूची :

1) वर्तमान संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता- डॉ. छाया सिन्हा
2) कबीर की प्रासंगिकता आधुनिक संदर्भ- सिविल सर्विसस, नवम्बर-5-2014
3) आधुनिक संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता : एक अध्ययन- रेणु
4) कबीर की प्रासंगिकता- डॉ. भरत अ. पटेल
5) कबीरदास का वर्तमान समय में प्रासंगिकता की समीक्षा- जयंत कुमार बोरो
6) कबीर की प्रासंगिकता- दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, रोहतक
7) कबीर की प्रासंगिकता : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में- प्रो. महिमनराम जी.पंडया

डॉ. श्रीकांत बी. संगम